५. पंचम अध्याय : उपसंहार (Conclusion) :

"उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अप्रकाशित, अप्रचलित और नवनिर्मित औडव-औडव, औडव-षाडव तथा षाडव-षाडव जाति के रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन" इस विषय के अभ्यास दौरान इससे सम्बंधित सभी अध्यायों से जो तथ्य सामने उभरकर आये हैं उन सभी तथ्यों के निष्कर्ष का संक्षिप्त रूप से विवरण किया गया है |

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत संगीत की व्याख्या के साथ संगीत के उद्‌भव के विषय में अनेक विद्वानों के मंतव्य का अभ्यास करके अन्धकार युग के अन्तर्गत पूर्व पाषाण काल का अभ्यास करते हुए यह तथ्य सामने आये की इस काल के लोगों को भाषा का ज्ञान तो नहीं था परन्तु 'हूँ हूँ हेवा हूँ हूँ हेवा' जैसी विचित्र प्रकार की सांगीतिक ध्वनि यह निकालते थे | इन लोगों ने पत्थर के टुकड़े से मंजीरे जैसे अकार का वाद्य बनाया था जिसे 'अग्सा' कहते थे | संगीत का प्रयोग शिकार करते वक्त, मछलियाँ पकड़ते वक्त, नारी को प्रसन्न करने के लिए इत्यादि समय पर करते थे | उत्तर पाषाण काल के अभ्यास द्वारा यह तथ्य सामने आये की इस युग में सामूहिक संगीत का जन्म हो चूका था तथा संगीत ने इस काल के लोगों को सभ्यता की ओर झुकाया | महिला पुरुष दोनों ही संगीत का आनंद लेते थे | ताम्र काल में संगीत की स्थिति इतनी परिपक्व हो गई थी की आने वाले युग के लोगों ने भी इसका लाभ उठाया, इस युग में संगीत को धार्मिक रूप दिया गया | इस युग के लोगों ने सर्व प्रथम संगीत को इश्वर आराधना का उपकरण बनाया | देवी देवताओं की पूजा अर्चना संगीत द्वारा करते थे | इस युग में भाषा का जन्म हो चूका था अर्थात स्वरों के अन्दर लोगों ने शब्द को उतारना आरम्भ कर दिया था | लोह काल में इस युग के लोग विवाह उत्सव गा-बजाकर करते थे | आगे सिन्धु घाटी की सभ्यता

और संगीत के विषय का अभ्यास के दौरान यह तथ्य सामने आये की सिन्ध प्रदेश के लरकाना जिले में मोहनजोदड़ो नामक स्थान पर खुदाई में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, औजार, प्राचीनतम शिवजी की तांडव नृत्य करती हुई मूर्ति इत्यादि प्राप्त हुई है; इससे यह पता चलता है की इस काल में संगीत कितना उन्नत अवस्था में था | आगे वैदिक युग के अन्तर्गत सामवेद जो प्रत्यक्ष गायन से सम्बंधित था, इसमें ऋगवेदों के सभी मन्त्रों को तत्कालीन धुनों के सहारे गाया जाता था | ऋगवेद में गीत के लिए गिर, गातु, गाथा, गायत्र तथा गीति जैसे शब्द प्रयोग किये जाते थे | स्वर (यम) की संख्या, सामवेद में स्वरों का स्वरुप इत्यादि के अभ्यास से यह पता चलता है की सामगान में पहले केवल तीन से चार स्वर होते थे, बाद में धीरे-धीरे स्वरों की संख्या बढ़कर इन में सातों स्वरों का प्रयोग होने लगा | यह भी पता चलता है की सामवेद के स्वरों का स्वरुप अवरोहात्मक था | तथा सामगान का ग्राम " म ग रे सा नि़ ध़ प़" इस प्रकार अवरोहात्मक क्रम से था, जो मध्यम स्वर से प्रारंभ होता था | सामगान का जो शुद्ध ग्राम था; वही भरत और शारंगदेव के शुद्ध स्वरों के स्थान है | अर्थात आधुनिक दृष्टि से देखा जाय सामवेद के स्वरों में गंधार तथा निषाद कोमल थे | सामगान की मूर्च्छना के अभ्यास से यह पता चलता है की सामगान का जो भी पहला स्वर हो 'आरंभक' कहलाता था; आरंभक स्वरों को बदलने से भिन्न-भिन्न स्वरों की प्राप्ति के कारण भिन्न-भिन्न रूप वाले गान सामने आये, अर्थात जो, जाति और राग का आधार बना, मतलब सामगान में मूर्च्छना, जाति का बिज स्वरुप वर्तमान था | इस पश्चात ब्राह्मण काल को देखते हुवे यह विदित होता है की मूर्च्छना का आरंभ भरत के नाट्यशास्त्र से पूर्व ब्राह्मण काल से ही हो चूका था | आगे नारदीयशिक्षा के अन्तर्गत पशु-पक्षियों की ध्वनि से तारता का निर्धारण, स्वरों का उद्भव स्थान तथा नामकरण, राग तथा ग्रामराग का अर्थ, ग्रामराग का नामकरण तथा विकास

क्रम इत्यादि का वर्णन किया है | मतंगमुनी तक ग्रामरागों का पूर्ण विकसित रूप दिखाई देता है; जैसे-जैसे रागों की अवधारणा में परिवर्तन होता गया वैसे-वैसे ग्रामराग प्रचार से जाते रहे, शारंगदेव तक इनका प्रचार ख़त्म सा हो गया था | आगे नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, सारणा, जाति, जाति गायन, गितियाँ, ध्रुवा गीत इत्यादि की चर्चा की गई है | भरत ने क्रमयुक्त सातों स्वरों के एक साथ प्रयोग करने को मूर्च्छना कहा है | भरत ने षड्जग्राम की ७ तथा मध्यमग्राम की ७ इस प्रकार १४ मुर्च्छानाएं बताई है | आगे मतंग कृत 'वृहदेशीय' के अन्तर्गत मतंग को धातु की वंशी का किन्नरी वीणा का अविष्कारक माना है | वीणा के तार पर परदे लगाने का काम सर्व प्रथम मतंग ने किया | मतंग ने ग्राम और मूर्छना शब्द की विस्तृत परिभाषा की है | जाति गायन के स्थान पर 'राग' शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम इस ग्रन्थ में हुवा है | भरत के काल के जातिगायन का विकास होकर मतंग के समय में राग गायन के रूप में प्रचलित हो गया था | मतंग ने सात गितियों के अन्तर्गत ग्राम रागों को बाँटा है | भरत ने राग स्वरुप का वर्णन नहीं किया है जबकि मतंग ने सर्व प्रथम राग शब्द की व्याख्या स्पष्ट की है | भरत ने गंधार ग्राम को स्वर्ग लोक का माना है तब मतंग ने गंधार ग्राम का उल्लेख किया है | जाति-गायन के स्थान पर राग-गायन की नींव मतंग कृत वृहदेशी में डाली गई है | इस ग्रन्थ में सबसे पहले राग तथा प्रबंधों का विस्तृत वर्णन भी दिखाई पड़ता है | इस के बाद संगीत रत्नाकर के दस विध राग लक्षण की चर्चा की गई है | तत्पश्चात मुसलामानों के काल का सर्व प्रथम ग्रन्थ राग तरंगिणी के अभ्यास से यह प्रतीत होता है की लोचन ने राग-रागिनी पद्धति के स्थान पर थाट-राग पद्धति को अपनाकर थाट राग पद्धति का बीजारोपण किया है | इस ग्रन्थ में निबद्ध तथा अनिबद्ध गान ऐसे गान के दो भेद बताये गए है | लोचन का शुद्ध थाट; वर्त्तमान काफी थाट के समान है |

इस ग्रन्थ में रागों के गायन समय तथा औडव, षाडव तथा सम्पूर्ण जाति के रागों का वर्णन भी किया गया है | लोचन ने १२ थाट मानकर उसके अंतर्गत ७५ रागों वर्गीकरण किया है |

आगे राग-वर्गीकरण पद्धति का अभ्यास करते हुवे, चली आ रही राग वर्गीकरण पद्धति को तीन काल में बाँटा है १) प्राचीन काल २) मध्य काल ३) आधुनिक काल | प्राचीन काल के ग्रन्थकारों में भरत, मतंग तथा नारद महत्त्व के ग्रंथकार है | मतंग के समय में ही राग गायन का प्रचलन शुरू हो गया था | नारद कृत 'संगीत मकरंद' में षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम तथा गंधार ग्राम यह तीनो ग्रामों का वर्णन मिलता है; इस ग्रन्थ में षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम को भूलोक में प्रचलित बताकर गंधार ग्राम को स्वर्ग लोक का बताया है | स्त्री, पुरुष तथा नापुशंक रागों की चर्चा सर्व प्रथम इस ग्रन्थ में की गई है | औडव, षाडव तथा सम्पूर्ण जाति के कुछ रागों के नाम तथा ग्रह स्वर भी बताये हैं | मध्यकाल में शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग वर्गीकरण तथा राग-रागिनी वर्गीकरण की चर्चा की है; जिसके अन्तर्गत शिवमत, हनुमन्त, रागार्णव मत, कृष्ण मत तथा भरत मत मुख्य है | आगे मेल राग वर्गीकरण की चर्चा के पश्चात आधुनिक काल के अन्तर्गत रागांग पद्धति की चर्चा की है जिसके अंतर्गत स्व. नारायण मोरेश्वर खरे जी ने रागों का अध्ययन करके अनुभव के आधार पर पृथक ३० स्वर-समुदाय चुने जिन्हें 'रागांग' कहा है | थाट राग वर्गीकरण की चर्चा के बाद राग, रागों की जातियाँ इत्यादि के विषय में चर्चा के बाद प्रचलित राग, अप्रकाशित तथा अप्रचलित राग तथा नवनिर्मित राग इत्यादि की व्याख्या स्वरुप चर्चा की है |

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत औडव-औडव जाति के रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन के दौरान जो कुछ तथ्य स्वरुप अप्रकाशित,

अप्रचलित और नवनिर्मित राग सामने आये हैं उनका शास्त्रोक्त विवरण अंकित करके उपलब्ध बंदिशें दी गई है |

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत औडव-षाडव जाति के रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन के दौरान जो कुछ तथ्य स्वरुप अप्रकाशित, अप्रचलित और नवनिर्मित राग सामने आये हैं उनका शास्त्रोक्त विवरण अंकित करके उपलब्ध बंदिशें दी गई है |

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत षाडव-षाडव जाति के रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन के दौरान जो कुछ तथ्य स्वरुप अप्रकाशित, अप्रचलित और नवनिर्मित राग सामने आये हैं उनका शास्त्रोक्त विवरण अंकित करके उपलब्ध बंदिशें दी गई है |

उपरोक्त द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय के अभ्यास से यह प्रतीत होता है की इन तीनो अध्याय में समिलित रागों की, समय-चक्र के कालानुसार जब-जब निर्मिती हुई है, तब निम्नानुसार कारणों से हुई होगी - १) प्रचलित राग में एक से दो स्वर बदल देने से अर्थात शुद्ध अथवा कोमल करने से - जैसे की राग भूपाली में शुद्ध धैवत के स्थान पर कोमल धैवत का प्रयोग करने से राग प्रतीक्षा/भूपेश्वरी/भुपकली सामने आता है | २) किसी राग का वादी-संवादी स्वर बदल देने से - जैसे की राग रेवा का वादी-संवादी गंधार-धैवत है, तो अगर यह बदल कर धैवत-गंधार कर दिया जाय तो राग विभास की छाया दिखने लगती है | ३) किसी राग का राग-चलन अथवा राग-अंग बदल देने से - जैसे की राग रेवा पूर्वांग वादी राग है; अगर उसे उत्तरांग वादी राग मानकर चलन बदल देते है तब राग विभास सामने आने लगता है | ऐसे ही राग जैत तथा धन्यधैवत के विषय में है | ४) दो अथवा दो से अधिक रागों के मिश्रण द्वारा - जिस राग में दो रागों का मिश्रण होता है उसे 'जोडराग' कहते है, तथा जिस राग में दो से अधिक

रागों का मिश्रण होता है उसे 'मिश्रराग' कहते है | ५) कर्नाटक संगीत के संसर्ग से आये हुवे राग - दक्षिण में ज्यादातर गायन खड़े सुरों का देखने को मिलता है, इस गायन में ताल को विशेष महत्त्व दिया जाता है, आलापचारी की बजाय सरगम गाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा तानबाजी का प्रमाण भी कम होता है, इन सब बातों का परिणाम उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पर होने से बहुत से कर्नाटकीय राग उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में प्रचार में आये है, जैसे नारायणी, अभोगी इत्यादि | ६) किसी राग में विवादी स्वर का उपयोग करने से - जैसे राग सारंग में विवादी स्वर धैवत का प्रयोग अवरोह में करने से राग सामंत-सारंग के स्वर सामने आते है |

इस शोधकार्य के अभ्यास के दरम्यान कुछ राग ऐसे भी मिले है की जिनका नाम तो एक ही है परन्तु विविध घरानों के कलाकारों में रागों के स्वरुप इत्यादि को लेकर मतभिन्नता पाई जाती है | इस से विपरीत कुछ राग ऐसे भी मिले है की जिनके नाम तो अलग-अलग है परन्तु स्वरुप एक ही है | कुछ राग ऐसे भी है की वह एक से अधिक नामों से जाने जाते है | कुछ राग ऐसे भी सामने आये है की जिनके एक से अधिक प्रकार है - जैसे की राग पंचम | दीपक राग के एक से अधिक थाट युक्त निर्मित प्रकार भी सामने आये है |

इस शोधकार्य द्वारा निश्चितरूप से शोधार्थी के ज्ञान में तो संवर्धन हुआ ही है | परन्तु इस शोधकार्य के अभ्यास के दरम्यान जो चिंतन-मनन-मंथन, विचार-विमर्ष, विश्लेषण, तुलनात्मक चर्चा इत्यादि द्वारा जो फलस्वरूप तथ्य उभरकर सामने आये हैं, इन से आने वाली नयी पीढ़ी, संगीत जिज्ञासु तथा संगीत के विद्यार्थियों को अवश्य लाभ होगा |

प्रस्तुत शोध-कार्य में शोधार्थी द्वारा “उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अप्रकाशित, अप्रचलित और नवनिर्मित औडव-औडव, औडव-षाडव तथा षाडव-षाडव जाति के रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन” करने का समुचित प्रयास किया गया है | अभी भी इस विषय को लेकर काफी गुजाइश है; परन्तु समय मर्यादा को भी ध्यान में रखना आवश्यक है | वैसे देखा जाय तो कोई भी शोध-कार्य कभी भी पूर्ण नहीं होता है, यह तो एक श्रृंखला मात्र है, आगे आने वाली भावी पीढ़ी के लिए | कहा जाता है की हर एक शोध-कार्य, एक नए शोध को जन्म देता है | शोधार्थी का यह भी प्रयास है की इस शोध-कार्य के माध्यम से आने वाली भावी पीढ़ी को इस श्रृंखला से जोड़ सके, जिससे शोध के क्षेत्र में कुछ नयी संभावनाओं का प्रादुर्भाव होगा |